- चतुर्थ अध्याय -

साठोत्तरी हिन्दी के कई महत्वपूर्ण अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यासों का प्रवृत्तिगत मूल्यांकन

(1) पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा, सन 1961

(2) अंधेरे बन्द कमरें - मोहन राकेश, सन 1961

(3) वे दिन-निर्मल वर्मा, सन 1964

(4) मछली मरी हुई -राजकमल चौधरी, सन 1966

(5) रूकोगी नहीं, :--राधिका? -उषा प्रियंवदा, सन 1967

(6) टेराकोटा-लक्ष्मीकान्त वर्मा, सन 1971

(7) अंतराल- मोहन राकेश, सन 1972

(8) एक चिथड़ा सुख-निर्मल वर्मा, सन 1979

: चतुर्थ अध्याय :

साठोत्तरी हिन्दी के कई महत्वपूर्ण अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यासों का प्रवृत्तिगत मूल्यांकन।

हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा में मूल्य सापेक्षता की दृष्टि को लेकर आधुनिकता का जो आन्दोलन हुआ उसमें अस्तित्ववादी विचारधारा का भी काफी योगदान है।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने केवल पाश्चात्य देशों की जीवनपद्धति पर ही अपना प्रभाव नहीं छोडा बल्कि भारतीय जीवन में भी इससे परिवर्तन आ गया है। अस्तित्ववाद ने अपने साथ जो दृष्टिकोण रखा है, वह पारंपारिक मान-मूल्यों को व्यर्थ सिद्ध करता दिखायी देता है। द्वितीय विश्वयुद्धोपरान्त युद्ध की विभीषिका के कारण जो संकटापन्न स्थिति निर्माण हुअी, उसने मानव को अपने अस्तित्व के बारे में सोचने के लिए विवश किया। "फलस्वरूप अस्तित्ववादी चिंतनधारा साहित्य में ही नहीं, सामान्य व्यक्ति के बीच भी बहुचर्चित है, क्योंकि व्यक्ति की स्थिति में जो परिर्वतन हुअे है, उनको यह रेखांकित करती है।"[1]

आधुनिक युग के मानवीय संबंध जीवन के तनाव, एकाकीपन, विघटन, अजनबीपन व्यर्थता आदि के एहसास बदलते जा रहे हैं। जिसका परिणाम माँ-बेटी, पिता-पुत्र, पति-पत्नी और भाई-बहन जैसे निकटतम पारिवारिक संबंधों पर हो चुका है। रिश्तों में अजनबीपन, तनाव, एकाकीपन आ गया है। यह स्थिति हमारे साठोत्तरी अस्तित्ववादी लेखक-लेखिकाओं के नजर से छुटी नहीं है। उन्होंने इन महत्त्वपूर्ण सामाजिक और पारिवारिक संबंधों का परिवर्तन लक्षित किया और उसे अपने साहित्य में स्थान दे दिया। इन उपन्यासकारों में जो जीवन की निस्सारता, अर्थहीनता, बेतुकापन, निराशा, अकेलापन आदि के चित्रण की जो व्यापकता एवं गहराई मिलती है, उसमें जो अस्तित्ववाद का अंकन हुआ है, वह आज के युग को जैसे प्रेरणा-स्त्रोत का काम करता है। उन्हींमें से कुछ उपन्यासकार है, जिनके उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत अध्याय में हम करेंगे।

अस्तित्ववाद जीवन की समस्याओं में उलझे मनुष्य का दर्शन है। अस्तित्ववाद के प्रश्न मनुष्य के संकट को अभिव्यक्ति करते हैं। मानवीय स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। अस्तित्ववाद मनुष्य की उदासीनता को

दूर करके उसकी आत्मिक जागृति करता है। मनुष्य को 'स्व' के प्रति चेतित करता है। एक नये विश्लेषण की ओर मनुष्य को अभिमुख करता है। अस्तित्ववाद आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं को स्पर्श करता है। अस्तित्ववाद ने मानव संकट की सफल और स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। अस्तित्ववादी दर्शन मानव पर छाये हुए संकटों से चिंतन में अधिक विकसित हुआ है। अस्तित्ववाद ने पारंपारिक समस्याओंसे दूर रहकर आत्यंतिक गंभीर समस्याओं पर नये सिरे से सोचा है। जीवन की मूलभूत समस्याओं को अस्तित्ववादियों ने उठाया है।

"अस्तित्ववादी विचारकों ने परंपरागत दार्शनिक चिंतकों का आतंक मानकर अपनी वैयक्तिक प्रतिभा, चिंतनक्षमता, परिस्थितियों के बीच जिंदा वैचारिक संघर्ष की तीव्र अनुभूति से जो कुछ मानवी जीवन की मूलभूत समस्याओं के रूप में उन्हें तीव्रता से प्रतीत हुआ, उसको उठाया। इसमें जीवन को सार्थक बनाने का मूलगामी चिंतन नजर आता है। वैज्ञानिक विकास और मनुष्य भौतिकता का गुलाम बना। इस परिवर्तित असंगति के कारण अस्तित्ववादी चिंतकों को गहराई से सोचने के लिए बाध्य किया। इससे अस्तित्ववाद आधुनिकयुग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वाद बन बैठा। आज के मनुष्य के सामने मुख्य प्रश्न विश्व का नहीं, तो अपने अस्तित्व का है। दूसरे महायुद्ध के उपरान्त यह वाद अधिक तीव्र बना। आज द्वंद्वग्रस्त स्थिति में अस्तित्ववाद का महत्त्व है। अस्तित्ववादी दर्शन मानव को अपनानेवाला है। मानव की संत्रस्तता ही उसके निर्मीती का मूल स्त्रोत है। यह वाद मानव को, अपने बारे में ज्ञान करा देनेवाला, नये नीति विचारों की ओर मानव को प्रवृत्त करनेवाला, दार्शनिक चिंतन है।"[2] यह एक सशक्त वैचारिक प्रक्रिया है। इसमें , मूल्यों पर जोर दिया गया है। यह वाद समाजवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद का विरोध करता है। आज की भ्रष्टाचारपूर्ण स्थिति में अस्तित्ववाद का क्रान्तिकारी और नैतिक स्वरूप सोचनीय है। हम यहाँ साठोत्तर हिंदी के कई महत्वपूर्ण अस्तित्ववादी धारा से प्रभावित उपन्यासों पर सोचेंगे।

"साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में अज्ञेयजीने अस्तित्ववादी समस्याओं को अवश्य उठाया है परंतु उन्होंने इन समस्याओं पर भारतीय ढ़ंग से चिंतन किया है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों पर कहीं प्रत्यक्ष रूप में तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप में अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववादी धारा को स्थापित करने और समझाने का महत्वपूर्ण काम अज्ञेय, डॉ. देवराज, डॉ. प्रभाकर माचवे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन राकेश, डॉ. सुरेश सिन्हा, निर्मल वर्मा, रमेश बक्षी, श्रीकान्त वर्मा, राजकमल चौधरी, महेन्द्र भल्ला, उषा प्रियंवदा, इलाचन्द्र जोशी, सुदर्शन नारंग, जैनेंद्र, ममता कालिया, निरूपमा सोबती, शैलेश मटियानी आदि लेखकों ने किया। इसका अर्थ यह नहीं कि, इन लेखकों ने अस्तित्ववाद का दार्शनिक ढ़ंग से अध्ययन किया है और उपन्यास

में प्रयुक्त किया है। प्रतिभाशाली सर्जक साहित्यिक वायुमंडल में प्रचलित बातों को अपनी संवेदना के माध्यम से ग्रहण करके उसको अभिव्यक्ति देता है। अस्तित्ववादी विचारधारा और अनुभवी प्रणाली साठोत्तरी भारत के वायुमंडल में प्रचलित बातों को अपनी संवेदना के स्तर पर उठाकर उपर्युक्त उपन्यास लेखकों ने अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यास लिखे।"[3]

इस लघुशोध -प्रबंध में इनमें से कई महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का सामान्य परिचय हम नहीं कराएँगे।

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा -1961

उषा प्रियंवदा लिखित उपन्यास 'पचपन खंबे लाल दीवारें' में मध्यवर्गीय समाज के घुटन और संत्रास का चित्रण किया गया है। इसमें 'सुषमा' नामक प्रमुख नारी-पात्र की मनोदशा का वर्णन किया गया है। सुषमा निम्नलिखित अस्तित्ववादी सूत्रों से घिरी लगती है।

1. अकेलापन :-

सुषमा जैसी पढ़ी-लिखी, सुसंस्कृत युवती के जीवन में यह एकाकीपन आया है। परिवार के उत्तरदायित्व के भार में 'सुषमा' के जीवन का एकमात्र लक्ष्य अपने परिवार की जिम्मेदारियां है।परिवार के भाई-बहनों में वह सबसे बड़ी है। बहनों की शादियाँ, भाई एवं बहनों की पढ़ाईयाँ, माँ-बाप के प्रति कर्तव्य आदि जिम्मेदारियों के बोझ के नीचे वह इतनी दब गयी है, कि स्वयं का विवाह एवं स्वयं के भविष्य के बारे में सोचने का मौका उसे मिलता ही नहीं है। उज्ज्वल भविष्य का मौका मिलने पर भी इस स्थिति में उसे वह अंजाम नहीं दे पायी है। "वह एक तरूण किशोरी का स्वप्न था, जो कि अनुकूल जलवायु न पाकर कुम्हला गया।"[4] सुषमा ने अपने भाई बहनों के स्वप्नों के सामने अपने सपने एवं इच्छाओं को कुचल दिया है। जिस परिवार के लिए उसने अकेलेपन को मोल लिया है, वही परिवार उसे समझने में असमर्थ है। यहाँ तक कि, उसकी माँ भी उसे समझने का प्रयत्न नहीं करती। सुषमा को रह-रहकर उनके बीच अकेलापन महसूस होता है।"उस क्षण सबसे घिरी बैठी सुषमा जैसे अकेली हो गयी।"[5]

सुषमा के जीवन में नील के रूप में उनके अकेलेपनका साथीदार आ जाता है। जिससे उसका अकेलापन मिट जाने की आशा पल्लवित होती है, "अकेलेपन में हरेक के मन में एक मूर्ति उपज आती है, उस क्षीण तन्तु के बल पर ही लंबे, अकेले पल कटते जाते हैं।"[6] लेकिन वह उसका प्रेम सुषमा के अकेलेपन को दूर

नहीं कर पाते क्योंकि, यहाँ पर सुषमा का आधुनिक अहंवाद आडे आता है। उसे लगता है कि , उन दोनों के उम्र का अन्तर उनके वैवाहिक जीवन को सफल नहीं होने देगा। वह नील से कहती है, "मैं तुमसे इतनी बड़ी भी तो हूँ नील। हमारा विवाह कभी सफल न होगा। मुझे सदा यह विचार कोसता रहेगा कि, कहीं कोई बहुत छोटी, बहुत सुन्दर लड़की, मुझसे तुम्हें न छीन ले।"[7] हम कह सकते हैं कि सुषमा का यह भय आज के मानव के भौतिकवादी प्रवृत्तियों की देन भी हो सकता है। जिसके कारण वह नील को भी अपना न सकी। यहाँ भ्रमभंग की प्रोफेसर सुमन शाह की याद आती है, जिसने अपने से उम्र में कम चंदन से विवाह करने से इन्कार किया।

कभी-कभी सुषमा इस अकेलेपन और रिक्तता की अनुभूति को तोडने के लिए संवेगों की दहलीज पर खडी होकर अतीत में झांकने और मन की संकुल गलियों में भटका करती है। यह स्मृतियाँ ही अन्त में उसके अकेलेपन का सहारा थी। होस्टेल की लडकियाँ, अध्यापिकाएँ, परिवार के लोग इनके बीच रहकर भी उनके अपनेपन के अभाव में वह अकेली ही रह जाती है। "जीवन में न जाने कहाँ कुछ ऐसी बात बिगड गयी थी, जो अब लाख बनाने पर भी न बनेगी। इतने लोगों से घिरे रहने पर भी वह अकेली ही रहेगी।"[8]

2. अजनबीपन :-

सुषमा जिन लोगों की खुशी के लिए अपने जीवन में प्रयत्न करती रही, फिर चाहे वह छात्रावास की लडकियाँ हो या, उसके परिवार के लोग, उन्हीं लोगों की स्वार्थी प्रवृत्ति ने उसमें अजनबीपन का भाव जगा दिया है। "शाम के समय प्रसन्न मूड में माँ यह पूछकर कि, नील नीरू के लिए कैसा रहेगा -उसके हृदय को बेध देती है। इन्हीं विपरीत स्थितियों के बीच से उभरकर अजनबीपन का बोध पूरे वातावरण में छा जाता है और सब एक दूसरे के लिए अजनबी हो जाते हैं।"[9] घर के प्रति उससे आशा लगायी माँ और उसके बहनों का यौवन उसे अजनबी बना देता है।

नील और सुषमा के संबंध को छात्रावास की लडकियां एवं अध्यापिकाओं ने उपहासास्पद बना दिया था। सुषमा उनके बीच अजनबी बन गयी।

ऊब एवं घुटन :-

सुषमा इस उपन्यास में ऊब, संत्रास एवं घुटन जैसी मानसिक द्वंद्व से गुजरती है। इसके लिए उसका प्रेम भी कारण हो रहा है। नील से इसके लिए उसका प्रेम भी कारण हो रहा है। नील से वह प्यार करती है, लेकिन परिवार की जिम्मेदारियों के कारण उससे विवाह नहीं करना चाहती। अपने प्यार को न पाने के एहसास से

वह अंदर ही अंदर घुट रही है। "नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ केवल एक छाया, एक खोये हुए स्वर की प्रतिध्वनि, और जब ऐसी ही रहूँगी, मन की वीरानियों में भटकती हुई।"[10] सुषमा की यह घुटन उसे दुनिया के प्रति ऊबकाई उत्पन्न कर देती है। अपनी बहन की शादी में वह शरीक नहीं हो पाती है। दुनिया की खुशियां उसे निरर्थक लगने लगती है। "सुषमा का मन बिल्कुल रीता था, कहीं कोई हिलोर भी नहीं। विवाह की सारी खुशी उसे अछूता छोड गई थी।"[11]

2. पीडा एवं संत्रास :-

अस्तित्ववादी दार्शनिकों में, "कीर्केगार्द ने संत्रास को बहुत ही परिष्कृत और उदात्त रूप दे दिया है। कीर्केगार्द के अनुसार संत्रास एक पवित्र अवसाद या पाक मालीखुलिया (Sacred melancholy) है, जो मनुष्य को भ्रष्ट होने से और पतनोन्मुख होने से निरंतर बचाती है।"[12] 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा भी एक भय के कारण संत्रस्त है कि नील से विवाह करके कहीं वह कोई भूल न कर बैठे जिससे बाद में पछताना पडे। कहीं नील को यह न लगे कि उसने अपने से पाँच साल बडी सुषमा से शादी की है और यह उसकी गलती है। कीर्केगार्द के दृष्टिकोण से सोचा जाए तो सुषमा यहाँ स्वयं और नील के भविष्य के वैवाहिक जीवन को पतनोन्मुख होने से बचा रही है, अपने भय और संत्रास के कारण। ज्यां-पाल ने अपने ग्रंथ में संत्रास की विवेचना करते हुए कीर्केगार्द के जीवन और दर्शन का विशेष उल्लेख किया है।

इस उपन्यास में उषाजी ने मध्यवर्गीय नारी की पीडा को स्पष्ट किया है, जिसका माध्यम सुषमा बन गयी है। डॉ. अतुलविर अरोडा के अनुसार, "उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में आधुनिकता की प्रकृति का नियतिगत संदर्भ उसकी भ्रमजालिक भंगिमा में ही उभारने का प्रयास किया है। इससे परे उपन्यास नारी के आत्मपीडा का दिग्दर्शन भी है, जिसमें आधुनिकवाद बाद की 'सैडिस्ट' प्रवृत्तियों की झलक मिलती है।"[13] वहीं आगे सुषमा के लिए उसकी पीडा का वर्णन करते हुए कहते हैं, "सुषमा उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद तक आते-आते तड़प और अवसाद की तीव्रता से अनुभूति करती है।"[14]

3. जीवन की निरर्थकता एवं निराशावाद :-

प्रस्तुत उपन्यास में सुषमा को जो अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, पीडा एवं सत्रास की भावों की अनुभूति होती है उससे वह जीवन के प्रति उदासीन बन जाती है। निराश होकर वह नील से कहती है कि वह

उसे छोड दे। अपने आकर्षण में ना बांधे, क्योंकि उसे अपनी जिन्दगी की कोई एहमीयत नहीं। "मेरी जिन्दगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं।"[15] वह न चाहते हुए भी नील को अपने जिन्दगी से निकाल देती है। "जाओ नील जाओ!"[16] सुषमा नियति के सामने हार मानकर अपने जीवन को उसी छात्रावास के पचपन खंभों और लाल दीवारों में एकाकीपन से ढ़ालने का निश्चय कर लेती है। नियति से न लड पाने की अपनी कमजोरी को स्वीकार कर वह निराश होकर, विवश होकर मीनाक्षी से कहती है, "आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यही पाओगी। कॉलेज के इन पचपन खंभों की तरह स्थिर, अचल ।"[17]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि सुषमा प्रस्तुत उपन्यास में अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों से पीडित है, लेकिन उनसे लडना उसके बस में नहीं है। अन्त में उसने पलायनावादी भूमिका अपनायी है। यहाँपर जीवन से पलायन, कायरता है जो सुषमा में परिस्थितिजन्य आ गया है।

2. अंधेरे बंद कमरें- मोहन राकेश- 1961

मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरें' उपन्यास में दिल्ली जैसे महानगरों में जीवन बितानेवाले लोगो की जिन्दगी का चित्रण किया है। 'दिल्ली' महानगर इस उपन्यास का केन्द्र है। लेखक ने वहां के जीवन की व्यर्थ आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, जटिलताओं एवं तनाव से युक्त मनोदशाओं का वर्णन किया है, जिसमें जीकर उपन्यास के पात्र अकेलापन, अजनबीपन, विवशता आदि अस्तित्ववादी भावनाओं का अनुभव करते हैं।

इस उपन्यास की कथावस्तु हरबंस और नीलिमा इन दोनों पति-पत्नी के दांपत्य जीवन पर आधारित है।

1. अकेलापन :-

प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक जिन्दगी की चाहत को रखेनवाले दंपति के अकेलेपन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार, "उपन्यास में महानगरी में मानवीय संबंधों के टूटने की स्थिति और अकेलेपनका बोध है।"[18]

नीलिमा और हरबंस यह दोनों पति-पत्नी आधुनिक विचारों के हैं। उनमें वैयक्तिक चेतना प्रखर एवं तीव्र है। दोनों की चाहों और व्यक्तित्वों की हमेशा टकराहट होती रहती है।"कलाकार बनने का स्वप्न

देखनेवाली एक स्त्री और उसके पति के बीच कशमकश और इन दोनों का जोड ठीक नहीं बैठा है।"[19] नेमीचन्द्रजी के इस कथनसे पता चलता है कि हरबंस और नीलिमा में एक दूसरे के लिए कितना अलगाव एवं अकेलापन है।

हरबंस के लन्दन चले जाने के बाद वह नीलिमा के बिना अकेलापन महसूस करता है। लंदन की भीड-भाड की जिन्दगी में वह स्वयं को अकेला महसूस करता है। "मुझे लगता है, जैसे मैं दुनिया से बिल्कुल कट गया हूँ और अपने में बिल्कुल अकेला हूँ।"[20] हर शाम उसपर उदासी छा जाती है। नीलिमा से साथ भी उसका निभता नहीं और वह उससे दूर भी रह सकता नहीं है, "अतीत, वर्तमान, भविष्य और इन सबसे ऊपर अपना अकेलापन मेरे ऊपर बाघ की तरह झटपते हैं। तुम्हारे साथ और तुम्हारे बिना, दोनों ही तरह जिन्दगी मुझे असंभव प्रतीत होती है।"[21] हरबंस नीलिमा से एक पत्र में अपनी यह विवशता जाहिर करता है। उसे पता नहीं है कि, उसपर यह जडता एवं खालीपन क्यों छाया हुआ है? "अपने जीवन के बारे में वह पाता है कि, एक तरफ सहजीवन की यंत्रणा और प्रताडना है, तो दूसरी तरफ भीड से लदी हुई दुनिया के बीच अकेलापन और निगलता हुआ सूनापन है।"[22]

2. अजनबीपन :-

लेखक ने अजनबीपन की भावना पात्रों में दिखाने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लिया है। "अजनबीपन की भावना अपने विशद रूप में संपूर्णता के साथ हरबंस खुल्लर और नीलिमा के दांपत्य जीवन में अवतरित हुई है।"[23]

हरबंस का अपने आप के प्रति अजनबीपन प्रस्तुत वाक्य से स्पष्ट होता है, "हर नया आदमी मुझे बिल्कुल अपरिचित दुनिया का आदमी लगता है और मैं उससे अपने अन्दर की कोई चीज नहीं बांट सकता।"[24] नीलिमा और हरबंस के बीच का तनाव नीलिमा के प्रस्तुत कथन से व्यक्त होता है, "तुम जानते हो कि, हम दोनों के बीच कहीं कोई चीज है, जो हम दोनों को खटकती रहती है। हम दोनों चेष्टा करके भी उसे अपने बीच से निकाल नहीं पाते।"[25] दोनों के बीच का यह अजनबीपन उनकी विवशता का भी अनुमान करा देता है।

डॉ. विद्याशंकर राय के अनुसार, "आधुनिक मानवीय जीवनकी यह विवशता सबसे बडा अभिशाप है। यहीं विवशता मनुष्य को एक दूसरे से, यहां तक कि, इस संसार से भी अजनबी बना देती है। हरबंस और नीलिमा का दांपत्यजीवन इसका प्रमाण है।"[26]

3. वैयक्तिक स्वतंत्रता की चाह :-

यह भावना नीलिमा में खासकर दिखायी देती है कि वह सिर्फ खा-पीकर और घूमकर संतुष्ट नहीं रह सकती। "मैं अपने लिए इसके अलावा भी कुछ चाहती हूँ।"[27] यह आधुनिक नारी की भाषा लगती है, जो किसी भी हालत में अपने व्यक्तित्व एवं स्वतंत्रता की समर्थ स्वीकृति देती है। धीरे-धीरे उसका अहम् प्रबुद्ध होता है। वह अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने पति से टक्कर लेना जानती है।"[28] वह अपने पति के भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वह अपने पुत्र (अरूण) के आने पर पति का घर छोडकर सादा जीवन बीताना चाहती है।

नीलिमा के अलावा, सुषमा श्रीवास्तव में भी स्वतंत्रता की चाहत है। वह "पुरूषों के समकक्ष रहकर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है।"[29]

4. अस्तित्व के लिए चेतित और संघर्ष :-

हरबंस और नीलिमा में एक बात खास है कि, दोनों भी आधुनिकता का दंभ भरते हैं। अपने संस्कारों को छोड नहीं पाते। आधुनिकता का दंभ भरनेवाला हरबंस आधुनिक जीवन को केवल ऊपर से ही स्वीकार कर पाता है, मन से नहीं। उसके द्वंद्व और मानसिक सन्तुलन का कारण यही है। आधुनिक संस्कृति उसे पसंद है। "आधुनिक पति बनने के जोश में दस हजार रूपये में अपनी जायदाद बेचकर पत्नी नीलिमा का शौक पूरा करता है। अत्याधुनिक समाज के अनुकूल ढ़ालने के लिए वह उसे शराब सिगरेट भी पीना सीखाता है। जब पत्नी के कदम आगे बढ़ जाते हैं, तब पति के पुराने संस्कार सक्रिय होते हैं।"[30] इसका मतलब हुआ कि हरबंस में जो अहम् है, उस अहम् के अस्तित्व की रक्षा वह पुरानी मान्यताओं में ही मानता है। उनको टूटता देख, वह अपने अस्तित्व को टूटता देखता है और संघर्ष करता है।

नीलिमा भी 'परंपरा और आधुनिकता दोनों की खींचातानी में जीती है।"[31] वह नर्तकी बनना चाहती है,जबकि हरबंस उसे पेण्टिंग में दिलचस्पी लेना चाहता है। इस बात को लेकर नीलिमा के प्रयत्नों एवं

संघर्ष के बारे में नेमीचन्द्र जैन लिखते हैं, "वह आत्मोपलब्धि के लिए संघर्ष में लगी है, बेचैन है, रास्ता नहीं पाती और छटपटाती रहती है।"[32]

इस प्रकार हमें पता चलता है कि, हरबंस और नीलिमा के दांपत्य-जीवन का तनाव, खिंचाव आज की भौतिकवादी एवं आधुनिक सभ्यता का शिकार बनने का कारण है।

डॉ. प्रदीप शर्मा के अनुसार, "इस उपन्यास में आधुनिकता के नाम पर तनाव, घुटन, अस्तित्व की पीडा, मनुष्य की खोखली जिन्दगी, नारी-पुरूष के बदलते रिश्ते, दिल्ली के 'काफी हाऊस' से लेकर लन्दन तक के सामायिक वातावरण, राजनीतिक दाँवपेच, सांस्कृतिक संवेदना आदि को तेवर के साथ व्यक्त करने की कोशिश की है।"[33] उनकी यह कोशिश सही दिशा में सफल हुअी है।

इस उपन्यास में हरबंस और नीलिमा के अंतर्द्वंद्व से अस्तित्ववादी धारा का निर्माण होता है। इसी संघर्ष में अस्तित्ववादी प्रवृत्ति रिक्तता और शून्यता नजर आती है। व्यक्ति के अस्तित्व के प्रश्न को यहाँ उठाया है। एक बिस्तरे पर सोकर भी पति-पत्नी अजनबी और अपरिचित रह सकते हैं। यह दांपत्य जीवन की रिक्तता के घिराव से अटक गया है। इसमें आधुनिक युग के समस्त संत्रस्त व्यक्तियों का चित्रण है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ही गहरी खाई पर प्रकाश डालना इस उपन्यास का उद्देश्य लगता है। यहां आत्मनिर्वासन की पीडा उभर उठी है। हरबंस यहां आत्मनिर्वासन की भावना से पीडित है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान के कारण यहां मानवी मन की अनेक अंधेरी गुफाएँ खोली गयी हैं।

3. वे दिन - निर्मल वर्मा- 1964

'वे दिन' उपन्यास के लेखक निर्मल वर्मा ने इसे 'मैं' शैली में लिखा है। इसमें कथा-तत्व का अभाव-सा है।

उपन्यास का पात्र एक भारतीय छात्र है, जो प्राग में पढ़ने के लिए गया है। वहाँ वह तीन दिन एक टुरिस्ट पति-परित्यक्ता जर्मन नारी (युवती) 'रायना' के साहचर्य में बीताता है। वह वापस चली जाती है और 'मैं' मतलब यह छात्र 'वे दिन' याद करता है, जिनके दौरान उसकी मानसिक स्थिति का इसमें अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से चित्रण किया गया है।

1. अकेलापन :-

डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे जी ने इस उपन्यास को 'अकेलेपन की अवसादपूर्ण गाथा"[34] कहा है। उनके अनुसार, "बुनियादी अकेलेपन की संवदेना को अभिव्यक्त करनेवाला यह उपन्यास, इंद्रिय संवेदनों और मनोदशाओं को 'विविड' और 'वंडरफुल' ढ़ंग से अंकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है।"[35]

इस उपन्यास में अकेले पन की अनुभूति प्रमुख रूप से 'रायना' के साथ है। "एक पति-परित्यक्ता अभिशप्त नारी के मनोविज्ञान को निर्मल वर्मा ने बहुत गहराई तक परखा है।"[36]

रायना का अकेलापन 'मैं' को महसूस होता है, जब रायना उसके अतीत के बारे में बता रही थी। "हम दोनों अंधेरे में सहसा अकेले हो गए थे :- अकेलापन-जो दु-ख, पीडा, आंसुओं से बाहर है।"[37] रायना अभी भी अपने पति 'जाक' की स्मृतियाँ भूली नहीं है। माधुरी खोसला के अनुसार, "महायुद्ध से उत्पन्न व्यर्थता, अकेलापन सभी पात्रों के रोम-रोम में व्याप्त है।"[38] रायना का अकेलापन भी इन्हीं युद्धविभिषिकाओं का परिणाम है। वह एक जर्मन युवती है, जर्मनी देश जो दूसरे महायुद्ध का शिकार रह चुका है। रायना और उसके पति की मुलाकात इसी लडाई के दौरान हुअी लेकिन युद्ध की विभिषिका का परिणाम उन दोनों के मन पर हुआ। वे सफल गृहस्थी नहीं बीता पाये।"कुछ चीजें हैं, जो लडाई के बाद मर जाती है -शान्ति के दिनों में ... हम उनमें से थे। वे लोग घरेलू जिन्दगी में खप नहीं पाते। जाक ऐसा ही था।"[39]

उपन्यास का नायक 'मैं' भी इस अकेलेपन से अभिशप्त है। वह प्रकृति के साथ और भी अकेला हो जाता था। "सहसा मुझे वह आवाज सुनायी दी थी। आवाज भी नहीं - महज एक सर-सराहट-बर्फ और धूप में दबी हुई। मुझे हमेशा यह आवाज अकेले में पकड लेती थी, या शायद जब मैं अकेला होता था, तभी उसे सुन पाता था।"[40] 'मैं' को अपना देश छोडकर प्राण में परायापन लगता है, जिसमें वह स्वयं को अकेलेपन से घिरा पाता है। वह रायना से कहता है, " इस तरह पराये शहरों में घुमते हुए मुझे कभी-कभी कुछ अकेलापन -सा लगता है।"[41]

मि. थानथुन जिसे मैं टी. टी. कहकर पुकारता हूँ, वह भी प्राण में 'मैं' की तरह पढ़ने आया है, वह वहां 'अकेलेपन' की पीडा से छुआ नहीं है। "वह अजीब ढंग से एग्रेसिव हो जाता है - यह उसका अकेलापन है, या चेक लोगों के प्रति वितृष्णा जो पीने के बाद उभर आती है, मैं आज भी नहीं जान सका हूँ।"[42]

डॉ. इन्द्रनाथ मदान इस उपन्यास के पात्रों के अकेलेपन के बारे में लिखते है "इसमें अकेलेपन का बोध गहरे में है- उपन्यास में रायना भी अकेली है, उसका पति भी, उसका पुत्र भी, फ्रांज भी, मारिया भी, माँ भी और टी.टी भी। यह अकेलापन परिवेश और अपने से कट जाना दूसरे महायुद्ध का परिणाम है। युद्ध की छाया सारे उपन्यास पर मँडराती है।"[43]

2. अजनबीपन :-

निर्मल वर्मा ने प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक परिवेश में मनुष्यजाति में आये अजनबीपन की भावना को भी कलात्मक ढ़ंग से स्पष्ट किया है। डॉ. रमेशकुन्तल मेघ का कहना है कि, निर्मल वर्मा अजनबीपन एवं परायेपन की भावना अपने उपन्यास के पात्रो में एवं वातावरण में बडी कुशलता से व्यक्त करते हैं। "इस क्रम में पात्र एवं घटनाएँ भी 'वे', 'वह', 'वहाँ', 'कुछ', 'उसे', 'उस तरफ' की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह अजनबी शहर में अकेला यात्री, अपना प्रिय कोना, प्रिय वस्तुएँ, प्रिय मित्र, प्रिय या भयानक घटनाएँ खोज लेता है - और अजनबी शहरों में अपने को नये सिरे से छोड देता है।"[44]

'वे दिन' की रायना भी अपने अकेलेपन के निराकरण के लिए जहाँ भी जाती है, वहाँ के किसी अजनबी को अपना प्रिय मित्र बना लेती है और उन अजनबी शहरों में अपनापन पा लेती है। प्रस्तुत उपन्यास में भी प्राग उसके लिए अजनबी है, "उसके लिए प्राग में बहुत-सी चीजें अजनबी थी।"[45] लेकिन 'मैं' को अपनाकर उसने अपना अजनबीपन दूर किया। वह 'टुरिस्ट' और 'मैं' 'इन्टरप्रिटर (दुभाषी) के रूप में मिले थे।

अपने देश से दूर आये हुअे ये पात्र "अकेलेपन और अजनबीपन के सम्मिलित बोध को तोडने के लिए पीने का सहारा लेते है। पर इससे उनकी अजनबीपन की भावना और ज्यादह गहराती है।"[46]

3. भय एवं डर की भावना :-

इस उपन्यास के पात्रों पर किसी 'अज्ञात' बात का भय छाया हुआ है। 'मैं' को स्त्री-साहचर्य की अनुभूति न होने के कारण पहली बार जब वह रायना के निकट आता है तो उसकी समीपता उसमें एक 'अजीब' सा डर पैदा कर देती है, जिसे सिर्फ स्वयं अकेला ही अनुभव करता है, जो विस्मयकारी है, "उस कातर-से-डर का ... जिसमें पहली बार तुम्हारे माँ-बाप साँझा नहीं करते ... तुम्हारे मित्र भी नहीं।"[47] यही कारण है कि, जब एक

बार उसे रायना, होटल पर नहीं मिलती, ढूंढने पर दिखायी नहीं देती, तो वह उसके 'न होने' से इतना डर जाता है कि 'बार' में दिखायी देने के बाद वह शिथिल हो जाता है। "पूरे दिन की रिक्ति अब बाहर थी ... कुछ मिनिटों पहले का भय अब नहीं था। अब नहीं था, इसीलिए पता चला कि, जब वह था, तब कितना भयंकर था।"[48]

'मैं' का यह भय एवं डर उसका यह अविश्वास है कि, कहीं रायना उसे छोडकर चली गयी तो वह फिर अकेला हो जाएगा। यह भय एवं डर तब कम हो जाता है, जब वे दोनों एक दूसरे को शारिरीक एवं मानसिक रूप में एक दूसरे को समर्पित हो जाते है। "फिर वह भय मर गया और अन्धेरे में उस जगह चमकते मोती की तरह उग आई एक मर्मान्तक चाह।"[49] 'मैं' का यह डर, भय, संभोगीय मुद्रा में लीन हो जाता है, "वह भय का अन्तिम छोर था, जहाँ से हम पहली बार एक दूसरे में शुरू हुअे ...उसी में डूब जाने के लिए।"[50]

4. मृत्युबोध की भावना :-

'वे दिन' में मृत्यु विषयक विचार कुछ जगहों पर दिखायी देते है। अस्तित्ववादी दर्शन का आधार दूसरे महायुद्ध की विभीषिका रही है। इस उपन्यास की कथावस्तु घटित होने के लिए जो स्थान चुना गया है, वह चेकोस्लोवकिया की राजधानी 'प्राग' है लेकिन पात्रों में मृत्युबोध की मानसिकता गौण रूप में आयी है, उसका मुख्य विषय अकेलापन है। "उस दिन मैंने पहली बार मृत्यु के बारे में सोचा था। उस दिन मुझे काफी हैरानी हुई थी, क्योंकि, इससे पहले मैंने कभी उसके बारे में नहीं सोचा था।"[51] मृत्यु उसके लिए हैरानी की बात है। कभी-कभी वह अपने मृत्यु-विषयक अपने बचपन के विचारों से जोड देता है, "एक बार अप्रत्यशित-सा खिंचाव, जो कभी-कभी मुझे छुटपन में होता था:--छत के जंगले से नीचे झाँकते हुए ... मैं बहुत नीचे झुक जाता था, सिर्फ यह जानने के लिए कि कुछ और नीचे झुककर मैं गिर गिर सकता हूँ या नहीं ... मैं नीचे झुकता जाता। तब हर क्षण जीकर मरे का मोह, मरकर जीने का उछाह जकड लेता।"[52]

डॉ. यादवराव घुमालकी के मतानुसार "निर्मल वर्मा ने जर्मन युवती रायना और भारतीय युवक इंदी के दो सांस्कृतिक पैटर्नों के मध्य मनुष्य के हृदय की धडकन और अजनबीपन को खडा किया है। इसमें अस्तित्ववादी चिंतन के आधार पर मानव संबंधों की व्याख्या की है।"[53] इस उपनयास की अस्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ आधुनिक मानसिकता में ढ़ाली गयी है।

4. मछली मरी हुअी-राजकमल चौधरी-1966

डॉ. राजकमल चौधरी लिखित उपन्यास 'मछली मरी हुई' यह नितांत मनोवैज्ञानिक धरातल पर आधारित उपन्यास है यह मनोविज्ञान "एक मानसिक रोग"[54] को उद्घाटित करता है, जो 'लेस्बियाँ अर्थात् समलैंगिक यौनाचारों में डूब गई हुई स्त्रियों के बारे में ।"[55] कथन करता है। इन स्त्रियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस उपन्यास का प्रमुख विषय बन गया है। अपनी विषयगत विशेषता के कारण "मछली मरी हुई' लेखक की एक अछूती रचना है, जिसमें उसने सारे संस्कारों को त्यागकर परंपरा की लीक से हटकर सर्वथा एक नई अनुभूति, एक नूतन विषय से साक्षात्कार किया है।"[56]

हम जानते है कि, अस्तित्ववादी दर्शन परंपराओं से हटकर होनेवाली समस्याओं पर सोचता है। प्रस्तुत उपन्यास का विषय भी ऐसा ही परंपरा के चौखट से बाहर सोचता है। "परंपरित संस्कारों से थोडा हटकर यदि उदारतापूर्वक विचार किया जाए, तो इस उपन्यास के विषय और शिल्प में कुछ ऐसा अवश्य मिलेगा, जिसका मूल्यांकन करना आवश्यक है।"[57] परिणामस्वरूप इस उपन्यास के पात्रों में अकेलापन, अजनबीपन, अस्तित्व के लिए संघर्ष दिखायी देता है, जिसके कारण यह उपन्यास अस्तित्ववादी दर्शन को स्पर्श करता हुआ आगे बढ़ता है।

1. अकेलापन :-

उपन्यास का नायक 'निर्मल भागवत' एक व्यापारी है, जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद कलकत्ता शहर में "नई पीढ़ी के व्यापारियों की एक जमात एक सुबह सोकर उठने के बाद अचानक पूँजी, प्रभुत्व और उद्योग-धन्धों की बन्द तिजोरियां खोलकर नये-से-नये व्यापार करने के लिए चौरंगी, उलहौजी-स्क्वायर, महात्मा गांधी रोड, धर्मतल्ला और पुरानी क्लाइप स्ट्रीट में, अमरीकी शैली के ऊँचे दफ्तरों में बैठ गई। ...निर्मल पद्मावत इसी जमात का एक व्यापारी है।"[58] अतीत की कुछ कटु स्मृतियाँ उसके दिमाग में छायी हुई हैं, जिससे उसमें जो उदासी छायी हुई है, उसे मिटाने के लिए वह दिनरात परिश्रम पागलपन की हद तक करता रहता है। जिसके कारण वह सामाजिक संबंधों से दूर और अकेला बनता चला जाता है, "परिश्रम और प्रतिभा आप-ही-आप आदमी को अकेला बना देती है। उसे दूसरों का साथ करने का अवकाश नहीं देती।"[59] निर्मल इस अकेलेपन का इतना आदि हो जाता है, जैसे "उसने एकान्त को अपना आवरण बनाया।"[60]

निर्मल के साथ ही उपन्यास में डॉ. रघुवंश, कल्याणी के पति, एवं प्रिया के पिता ये सभी पात्र अपने जीवन में अकेलेपन से पीडित हैं। लेखक ने इन पात्रों को समाज के लोगों का प्रतीक बनाकर उनके लिए 'हम' इस शब्द का प्रयोग करके सभी के अकेलेपन की पीडा को स्पष्ट किया है। इनके लिए जिन्दगी एक कैदखाना है, "कल्याणी अपनी कब्र में कितनी अकेली है। हम सभी अपनी-अपनी जिन्दगी के कैदखाने में अकेले हैं।"[61] यहाँ तक कि, डॉ. रघुवंश की मृत्यु के बाद उनका शव भी लेखक को अकेला लगता है। वैसे इन्सान अकेला आता है, अकेला ही जाता है।' मनुष्यजाति के लिए सही मायने में उतरनेवाली यह उक्ति डॉ. रघुवंश के अस्तित्व के साथ जुडी है, जो अपनी जिन्दगी में अकेलेपन से काफी पीडित थे, जिसने मरने के बाद भी उनका पीछा नहीं छोडा, "क्षितिज के लाल, जलते हुए शमशान की ओर अकेला चला जा रहा था ... एकदम अकेला। डॉ. रघुवंश का शव।"[62]

शीरी पद्मावत जो अपने पहले पति मेहता को छोड निर्मल भागवत को अपनाना चाहती है, निर्मल ने अपने मानसिक विकृति का शिकार उसे भी बनाया है, जो अकेली हो गयी है, "शीरी अपने कमरे में, अपने बिस्तर में अकेली रह गई। अकेली, प्यास से छटपटाती हुई, जलती हुई।"[63]

2. अजनबीपन :-

अजनबीपन की समस्या से उपन्यास का नायक 'निर्मल भागवत' ग्रस्त है। वह बिहार का है। जब वह कलकत्ता आता है, तब वह उसके लिए एकदम अजनबी शहर था। "उस दिन पद्मावत इस शहर में खुद अजनबी था। अजनबी और अजनबीपन में खोया हुआ।"[64]

निर्मल की पहली प्रेमिका कल्याणी है, जिससे उसका परिचय भारतीय दूतावास में हुआ था। कल्याणी पुरुषों को अपने प्रेमजाल में फँसाकर उनसे पैसे वसूल करती है। यह उसका पेशा ही बन जाता है। कल्याणी निर्मल के साथ भी ऐसे ही पेश आती है। वह निर्मल से शारीरिक सुख चाहती है, लेकिन इस मामले में निर्मल का ठण्डापन देख वह उसे नपुंसक कहती है, "तुम यहीं आदमी हो ? काले पत्थरों के पहाड की तरह दिखते हो ! अगर इतने से आदमी हो ? बस ...।"[65] निर्मल इस अपमान को सह नहीं पाता। प्रिया, कल्याणी की लडकी है, यह बात मालूम होने पर शायद कल्याणी से अपने अपमान का बदला उसकी लड़की से लेना चाहता है, जो वह उस शहर में टिका हुआ है। कल्याणी की इसी बात से ही बस उसका मतलब है। उस शहर की बाकी जिन्दगी से

जैसे उसको कोई मतलब ही नहीं। उसके लिए उसमें अजनबीपन का भाव है, "वह इस जिन्दगी से अजनबी है। परिचय का एकमात्र सूत्र थी कल्याणी।"[66] निर्मल इस बात से इतना मनोरूग्ण बन गया है कि, इन्सानियत की पहचान करा देनेवाला करूणा का भाव उसमें नहीं है। अपने स्वयं के अस्तित्व के लिए वह अजनबी बन गया है। "निर्मल अजनबी है। निर्मल अपने-आपसे अजनबी है।"[67]

डॉ. विद्याशंकर राय के अनुसार "इस दुनिया के मूल्यों, आदर्शों तथा परंपराओं में अपने को न जोड पाने से मनुष्य अपने को इस संसार में अजनबी पाता है।"[68]

3. मृत्युबोध की भावना :-

प्रस्तुत उपन्यास में एक स्थान पर लेखक ने मृत्यु के बारे में स्वयं के विचार लिखे हैं। उनके अनुसार वह कोई रहस्य नहीं है। वह अभी आम बात बन गयी है। "मृत्यु अब रहस्य नहीं है। फ्रान्सीसी अस्तित्ववादियों ने और रूसी वैज्ञानिकों ने अब मृत्यु के विषय में कुछ भी सोचना-विचारना बन्द कर दिया है। मृत्यु क्या है? अब यह सवाल कोई नहीं पूछता।"[69]

उपन्यास में कल्याणी भी जन्म और मृत्यु में कोई फर्क महसूस नहीं करना चाहती बल्कि उसके लिए जन्म और मृत्यु के बीच जो इन्सान का अस्तित्व है, उसीके बारे में वह सोचती है, जो उसे एक तलवार की तरह लगता है, जो पतले धागे से बंधी है, कब छुट जाएगी, पता नहीं।"मृत्यु और जन्म में अधिक भेद नहीं है। न स्थान का और न कालपात्र का। भेद जीवन में है, जीवन और मृत्यु के बीच पतले धागे से बंधी राजा जनक की तलवार की तरह ..."[70] कल्याणी के इस कथन से उसका मृत्युविषयक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

शीरी पद्मावत के लिए मृत्यु की भावना मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से सोची गयी है। " मनोवैज्ञानिक शास्त्री मानते है कि, बचपन के प्रारंभिक वर्षों का जीवन और उस काल में हमारे मन पर पडे संस्कार जीवनभर हमें प्रेरित करते रहते हैं।"[71] लगभग इसी तरह शीरी के बारे में हुआ है।वह बचपन में अपनी माँ के मरे हुअे बच्चे को देखती है, उसकी बहन उसे बताती है कि उनके पिता के, माँ के पास जाने से माँ के पेट में बच्चा आ गया, जिसको जन्म देते ही मर गयी। यह बात शीरी के मन पर गहरी असर कर जाती है। माँ 'मरने की घटना उसकी 'राग' या लिबिडों में स्थानांतरित हो जाती है। यह घटना भय या त्रास।"[72] की जगह लेती है, जिसके कारण शीरी आजीवन पुरूषों के प्रति नफरत करती है, यह भ्रम मन में डालकर कि, पुरूष लोग स्त्रियों को पास बुलाकर उन्हें बच्चा देते

हैं और मार डालते हैं। तबसे वह अपनी बडी बहन और सिर्फ लडकियों से ही प्यार करने लगती है, जिसका रूपान्तर 'लेस्बियाँ' यानी समलैंगिक यौनाचार के आकर्षण में होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, इस उपन्यास में एक ही मृत्युबोध की भावना ने अपना अलग-अलग प्रभाव छोडा है।

4. अस्तित्व के लिए संघर्ष :-

प्रस्तुत उपन्यास का प्रत्येक पात्र अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष कर रहा है। उनका अस्तित्व का यह संघर्ष मनोविज्ञान का आधार लेकर स्पष्ट किया है। निर्मल पद्मावत इस उपन्यास का नायक अपने अस्तित्व के मामले में विद्रोही के रूप में हमारे सामने आता है। उसके इस विद्रोह का कारण उसके बचपन की एक घटना और यौवनावस्था की एक घटना है।

निर्मल जब छोटा था, तब उसकी माँ का उनका पैतृक मकान बेचकर निर्मल को अकेला और बेसहारा छोडकर एक लारीवाले के साथ भाग जाने की बात निर्मल के मन पर गहरा आघात करती है। वह सोचता है, "माँ को आदमी की जरूरत थी, अच्छा किया जो चली गई लेकिन मकान क्यों ले गई।"[73] बचपन में हुअे इस अपमान को वह सह नहीं पाता है। विद्रोही बन जाता है। "अमरीका से लौटने के बाद, अपने दिमाग को व्यावारिक दुनिया में लगता है और शीघ्र ही तीस मंजिले का 'स्काई स्क्रेपर' कल्याणी मेंशन बनवाता है, ऐश्वर्य सुख के लिए नहीं ,बल्कि उसके पीछे यह भावना कार्य कर रही थी कि, उसकी माँ भाग जाने के बाद वह पैतृक मकान से अपमानित करके निकाल दिया गया। एक प्रकार से अपनी माँ के प्रति बदला था और अपने अहं की तुष्टि भी।"[74]

इसके बाद यौवनावस्था में कल्याणी निर्मल को पौरूषहीन कहकर उसका अपमान करती है, जिसका बदला वह कल्याणी की बेटी प्रिया से लेता है। इस दौरान वह अपनी पत्नी को भी शारीरिक सुख नहीं दे पाता । पत्नी और हर स्त्री में वह कल्याणी को देखता है और अपनी अपमानित भावना से पीडित होता है ।प्रिया के पति वह नृशंस हो जाता है। उसमें कल्याणी की प्रतिमा देख वह उसपर बलात्कार करता है और हमेशा अपने अस्तित्व की घोषणा करता है कि, "प्रिया, तुम्हें, तुम्हें पद्मावत की ताकत का पता नहीं है।"[75] यह उसका चीखना कल्याणी से हुए अपने अपमान के प्रति था। प्रिया पर बलात्कार के बाद बदले की भावना से उसे मुक्ति मिलती है, "वह नॉर्मल बन जाता है, स्वस्थ बन जाता है।"[76] निर्मल अपना अस्तित्व पा लेता है।

निर्मल से शरीर सुख के लिए संतुष्ट न होने के कारण शीरी 'होमोसेक्सुअल' (Homosexual) बन गयी थी। निर्मल के प्रिया पर बलात्कार के बाद प्रिया स्वस्थ और स्वाभाविक हो जाती है। "शीरी से दोस्ती करके प्रिया भी होमोसेक्सुअल' हो गयी थी।"[77] निर्मल भी इस हादसे के बाद संतुष्टि पा लेता है। शीरी की होमोसेक्सुलिटी' दूर हो जाती है। सभी को अपना खोया अस्तित्व मिल जाता है। "जैसे अपने अस्तित्व की किसी अनिवार्यता के कारण शीरी...निर्मल के बहुत करीब आ गई पहली बार।"[78] 'मरी हुई मछली' को अपना जिन्दा अस्तित्व मिल गया था। "मरी हुई मछली के शरीर से प्रकट हो रही थी, ऊपर उठ रही थी एक स्त्री - शीरी पद्मावत।"[79]

इस प्रकार एक नये विषय को कथा का रहस्य बनाकर उसे मनोवैज्ञानिक धरातल की स्पष्टता देकर लेखक ने इस उपन्यास को अस्तित्ववादी दर्शन की भी जोड दी है। प्रस्तुत उपन्यास मानवी जीवन की विसंगतियों पर प्रकाश डालता है। यहाँ मृत्यु के रहस्य को भी चिंता का विषय बनाया है। इसमें अर्थचक्र और समलिंगी मिलन को आधार मानकर मानवी जीवन की विसंगति, संत्रास, टूटन, बिखराव का बोध कराया है। हालही में एक बहुचर्चित फिल्म 'फायर' में यही समस्या रही, जिससे काफी विवाद खडा हो गया है।

5. रूकोगी नहीं, . . राधिका? -उषा प्रियंवदा-1967

अपने अस्तित्व तथा स्वतंत्रता की खोज में भटकती हुई नायिका राधिका की विद्रोही कहानी को चित्रित किया है। इसमें अस्तित्ववाद के निम्न सूत्र देखने को मिलते है।

1. अकेलापन :-

उषा प्रियंवदाजी के इस नायिकाप्रधान उपन्यास की नायिका 'राधिका' ने अकेलेपन को खुद ही मोल लिया है।

राधिका की माँ की मृत्यु के बाद पिता ने उसे पाला-पोसा और बड़ा किया। पिता के साहचर्य का उसमें इतना आकर्षण बढ़ गया है कि, पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद राधिका को गहरा सदमा पहुँचता है। उसे लगता है कि, उसकी सौतेली माँ विद्या के कारण उन दोनों पिता और पुत्री के रिश्ते में दरार आ गयी है। वह घर छोडकर विदेश चली जाती है। वहाँ भी उस वातावरण में भी वह स्वयं को ढ़ाल नहीं पाती। राधिका ने "स्वयं को अपने जीवन के संबंधों से काटकर अलग कर देती है और उसे अकेलापन कचोटने लगता है।"[80]

राधिका पत्रकार डैनियल पीटरसन के साथ विदेश चली जाती है, लेकिन उसके साथ भी वह भावना के स्तर पर एकरूप नहीं हो पाती। वह उसे विषकन्या-सी जमी और संगमरमर की प्रतिमा' की तरह जड कहता है और उससे संबंध तोड देता है। राधिका से वह जिस चीज को पाना चाहता था, उसमें वह दिखायी नहीं देती। वह उससे कहता है, "मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूँ, मुक्त कर रहा हूँ। तुम्हें अपने साथ चलने के लिए इस कारण नहीं कह सकता क्योंकि, तुमने कभी, एक क्षण के लिए भी प्यार नहीं किया।"[81] डैन से अलग वह जब मिसेज होमर के साथ रहते हुए उसे अपना अकेलापन भयावह लगता है, तब माँ के बिना पापा के अकेलेपन के दर्द का उसे एहसास होता है। "मिसेस होमर के घर में रहते हुए कभी-कभी रात में जागकर, या किसी अकेले क्षण में राधिका को लगता है कि, उसने पापा के साथ बड़ा अन्याय किया है। पापा से उनकी संपूर्ण एकाग्रता की कामना करना ही राधिका की भूल थी। माँ की मृत्यु के बाद अठारह वर्ष उन्होंने अकेले काटे, यही क्या आश्चर्यजनक नहीं था? राधिका ने अब जाना था कि, अकेलापन कितना भयावह होता है।"[82]

भारत में लौटने पर यहां की परिस्थितियों में समझौता नहीं कर पाती और अपने अकेलेपन का साझीदार अक्षय को बनाने के सपने देखती है,लेकिन "राधिका अक्षय के मन में चलनेवाले परंपरागत संस्कारों और आकर्षण के द्वंद्व से परिचित है।"[83] इसीलिए उसे भी अस्वीकार कर देती है। अन्त में राधिका मनीष को ही अपना जीवनसाथी चुन लेती है। मनीष को उसका अतीत पता है, और जिससे भविष्य में निभ जाने की आशा है। यहीं पर राधिका में अपने अकेलेपन और अलगाव से बाहर निकलने का विश्वास उभरता है। विद्या के देहान्त के बाद पापा के आये हुअे अकेलेपन में वह शामिल नहीं होना चाहती और मनीष के पास चली जाती है।

हम देखते हैं कि, पिता और पुत्री दोनों ने अपने स्वार्थ के लिए एक-दूसरे को अकेला बना दिया है।

2. अजनबीपन :-

प्रस्तुत उपन्यास एक अत्याधुनिक युवती को निजी परिवेश में उसका अजनबी होने की व्यथा को मुखरित करता है। राधिका अपने हमउम्र सौतेली माँ विद्या से पापा ने शादी करने की बात से बिखेर जाती है। विदेश में अपने-आपको पाश्चात्य संस्कृति में न जुटा पाने के कारण फिर अपने भारतीय संबंधों में लौट आती है और वहाँ भी अपने को अजनबी पाती है। तीन साल के लंबे अर्से के बाद लौटी अपनी पुत्री की स्नेह से पूछताछ करने की बजाय वे सिर्फ औपचारिकता निभाते हैं। उसके अपने सगे-संबंधी उससे जब बेतुके सवाल एवं आशंका

भरी नजर से देखते हैं तो उसे अपना ही परिवेश अजनबी लगने लगता है। एक आलोचक के अनुसार, "पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपने अजनबी होने के आतंक-बोध से घबराकर पूर्व में पुन- लौट आई शिक्षिता और स्वतंत्र नारी ने एक दूसरे के किस्म के अजनबीपन से साक्षात्कार किया है। यह अजनबीपन पश्चिम की अनुभूति से कहीं अधिक गहरा और सच्चा है।"[84]

राधिका 'सुबह का भूला शाम को घर वापस आया' इस कथनी के अनुसार मन में आकांक्षाएँ लिये घर लौटती है और वहाँ उसे मिलता है, अजनबीपन एवं अकुलाहट। "उसने सोचा था कि, स्वदेश लौटने पर उसके अन्दर का अजनबीपन का जमा 'हिमखण्ड' शायद पिघल जाएगा। उसकी बेचैनी, अकुलाहट, ऊब समाप्त होगी और वह शान्ति का अनुभव करेगी। पर कुछ भी नहीं बदला। उसके भीतर का 'अजनबीपन' इस अपने परिवेश में और बढ़ता गया है।"[85]

3. अलगाव एवं पीडा :-

राधिका के लिए यह 'अलगाव' उसकी अत्याधुनिकता की सोच है। पिता के साहचर्य में वह इतना बंधी है कि 'पिता ने शादी कर ली' इस बात से वह समझौता नहीं कर पाती और अपने परिवार से अलग हो जाती है। अपने 'अलगाव' का एहसास उसे जब होता है तो उसे पीडा भी होती है। राधिका स्वयं अपनी अर्थहीनता का अनुभव करती है। "मेरा परिवार मेरा परिवेश, मेरे जीवन की अर्थहीनता और मैं स्वंय जो होती जा रही हूँ, एक भावनाहीन पुतली-सी ....।"[86] उसके इस उद्‌गार से उसकी आंतरिक पीडा का अनुमान होता है। राधिका को अपने परिवार में वैचारिक, भावनात्मक एवं परिवेशगत 'अलगावपन' का एहसास होता है। उसका यह अलगावपन उसकी 'मानसिक गाँठ' का परिणाम है। इसका कारण यह भी बताया गया है कि, "अब वह पिता के जीवन में विद्या के आने को सहन नहीं कर पाती।"[87]

4. वैयक्तिक स्वतंत्रता की चाह :-

यह प्रवृत्ति प्रमुखता से राधिका में दिखायी गयी है। वह स्वयं को एक स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली युवती समझती है। यहीं कारण है कि, वह घरवालों के रोष की परवाह न कर डैनियल पीटरसन के साथ विदेश चली जाती है। उसका वैचारिक स्वातंत्र्य उसके उक्त कथन से पता चलता है, "क्यों नहीं वह उन्नीस साल की स्वतंत्र युवती की तरह सुटकेस लेकर कहीं चली जाती ? बिना अपना पता-ठिकाना दिये।"[88] मि. शंकर के यहाँ

जब वह मकान स्वयं के लिए देखने जाती है तब मि. शंकर के टोकने पर वह कहती है, "मैं स्वेच्छापूर्ण जीवन की इतनी आदि हो गयी हूँ कि, विघ्न सह नहीं पाती।"[89]

राधिका किसीसे विवाह के बंधन में बँध जाने से पहले भी, सोचती है कि , विवाह के बाद कहीं उसका स्वातंत्र्य धोखे में न आ जाए। इसीलिए अक्षय और मनीष इन दोनों में से पति के रूप में परख कर ही चुनाव कर लेना चाहती है। डॉ. स्वर्णलता के अनुसार, "आजादी के बाद पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप स्त्री-पुरुष संबंधों में उन्मुक्तता आयी है। पहले पुरुष को ही विवाह के संबंध में चुनाव का अधिकार प्राप्त था, परन्तु अब नारी भी चुनाव की अधिकारिणी है।"[90] इसके अलावा मनीष, डैन आदि पात्रों में भी इस भावना का पुट हमें मिलता है। डॉ धुमालजी के अनुसार, "प्रस्तुत उपन्यास की राधिका प्रारंभ से अंत तक अस्तित्ववादी स्वतंत्रता पर बल देती है।"[91] यहाँ नारी के अस्तित्व को समझाने का प्रयत्न अस्तित्ववाद के आधार पर किया गया है। राधिका अस्तित्व को सुरक्षित रखकर स्वतंत्र जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

6. टेराकोटा-लक्ष्मीकांत वर्मा -1971

लक्ष्मीकांत वर्मा का उपन्यास 'टेराकोटा' अकेलापन, अजनबीपन, टूटन, संत्रास आदि अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों को सामने रखकर लिखा हुआ उपन्यास है। उपन्यास की नायिका इस कथावस्तु के केन्द्र में है। महर्षि व्यास लिखित 'महाभारत' कथा के उत्तरार्ध कथा का प्रतीकात्मक रूप इस उपन्यास की कथा है, जिसे भगवान श्रीगणेश लिखते हैं, ऐसा लेखक का कल्पनाजाल है। इसमें गणेशजी और महर्षि के अन्त में हुअे वार्तालाप में आज की मानवजाति का अस्तित्ववादी संकट से बचने का आशावाद हमें मिलता है।

1. अकेलापन :-

'मिति' एक पढ़ी-लिखी, सुन्दर और मेधावी लड़की है। परिवार में सभी भाई-बहिनों में बड़ी होने और माता और पिता के अपाहिज होने के कारण परिवार की पूरी आर्थिक जिम्मेदारी उसपर आ गयी है। परिवार को चलाने के लिए मिति दिल्ली में मि. खन्ना की कंपनी में स्टेनो की नौकरी करती है, साथ में उज्ज्वल भविष्य पाने के लिए आई.ए.एस. की परीक्षाएँ भी देती रहती है।

मिति शादी नहीं करना चाहती ,क्योंकि, उसका ख्याल है कि, उसकी शादी के बाद उसका परिवार बेसहारा हो जाएगा। परिवार की जिम्मेदारियों में वह गरीबी, भूखमरी, बेकारी इन समस्याओं से गुजर रही

है, जिसमें उसे और भी अपने अकेलेपन का एहसास होता है। "वास्तव में सारी गरीबी, सारी मूल्यहीनता और सारी विवशता के बीच अकेले वही है, जो सबको मौन रूप से झेल रही है।"[92]

मिति जब आई.ए.एस. बन जाती है तब आर्थिक परेशानियों से मुक्त होती है लेकिन उसकी अविवाहित जिन्दगी का सूनापन, अकेलापन कायम ही रहता है। "पहले वह समझती थी कि, शायद आर्थिक सुरक्षा की ही समस्या मनुष्य के लिए सबसे बड़ी समस्या है, लेकिन इस समस्या का हल पा लेने के बाद भी जैसे इसके अतिरिक्त बहुत कुछ ऐसा बचा रहता है, जिसके बिना जीवन का चलना कठिन होता है।"[93]

मिति अफसर बनने के बाद अपने परिवार की पूरी जिम्मेदारियाँ खत्म होने के बाद दूर पहाडी इलाके के एकान्त में जाकर रहना चाहती है। आखिर में वह मि. खन्ना के बिन माँ के बच्चों पर अपनी ममता ऊँडेलकर अपना अकेलेपन से घिरा जीवन सार्थ मान लेती है, "शायद उनमें व्यस्त रहने के नाते ही उसे अपने अकेलेपन और नितांत नीरस वातावरण में भी जीवन में भी जीवन को सार्थक समझने का अवसर मिलता है।"[94]

इस उपन्यास में मिति के साथ-साथ मि. खन्ना जो असफल वैवाहिक जीवन के शिकार है और शिक्षिका बसन्ती जो बाल वैधव्य का शिकार बनी है ये पात्र भी अकेलेपन की समस्या से छूटे नहीं है।

2. घुटन एवं संत्रास :-

मिती दन मनोदशाओं से पीडित है। रोहित जो उसे अटूट चाहता है, वह मिति की इस बेचैनी से परिचित है और उसे इसमें से बाहर निकालना चाहता है, "तुम्हारे इस अधूरे जीवन में भी एक घुटन है :-- मैं इस घुटन को ही समाप्त करना चाहता हूँ ....तुम्हें तुम्हारे अधूरेपन की बेबसी से मुक्त कराना चाहता हूँ ..."[95] मिति अपने परिवार को भूख और गरीबी की नरक से निकालना चाहती है, जिसके कारण अपनी शादी, विवाह के सुख से वह वंचित रहना चाहती है, अपनी आकांक्षाओं को भीतर ही दबा देती है। उसके इस मनोदशा को उसकी बहन शोभा पहचानती है, "शोभा को लगा, जैसे मिति एक बहुत सरल और आवश्यकता से अधिक अपने मन को मारकर रखना चाहती है।"[96]

मिति जिन्दगी में मजबूरीवश जीवनसाथी के रूप में रोहित, अमिताभ, मि. खन्ना किसी को भी न अपना सकी। वह भी इस बात से अन्दर ही अन्दर घुटती है- "कहीं कोई ऐसी पीडा या वेदना है जो उसे बिल्कुल ही घुटन की स्थिति में डाल देती है। प्राय- वह इसको कह नहीं पाती और भीतर ही भीतर घुटती रहती है।"[97]

3. टूटन की भावना :-

मिति परिवार की जिम्मेदारियां सँभालते-सँभालते अपने व्यक्तित्व से टूट चुकी है। "आज उस नितांत मांसलता को नितांत झुठलाकर जीने की प्रक्रिया शायद उसके व्यक्तित्व के टूटने का परिचायक है।"[98]

रोहित इस बात को जानता है कि, मिति की जिम्मेदारियाँ समाप्त होने पर उसके जिन्दगी का मिशन खत्म होगा तब उसके जिन्दगी में कितना खालीपन और रिक्तता आएगी। "वह टूटना भयानक होगा, क्योंकि, मिति के जीवन को 'मिशन' ही समाप्त हो जाएगा।"[99] वह अपने इस शून्यता और टूटनसे बचने के लिए विकी और सिमि इन बच्चों का आधार लेती है। "उमा के विवाह के बाद मिति में अचानक शून्यता उभर आती है, लेकिन फिर दूबारा वह विकी और सिमी में ही अपनी शून्यता के पूरक खोज लेती है। विकी और सिमी ने उसे टूटने से बचाया।"[100]

4. स्वतंत्रता का चयन एवं जीवन-दृष्टिकोण :-

जिस स्वतंत्रता की भावना को मिति पहले जीवन में निरर्थक मानती थी, उसे वह बाद में जीवन का आधार बना लेती है। रोहित के पूछने पर कि उसने बिना शादी के आश्रित बच्चों की माँ बनना कैसे स्वीकार किया? तब वह कहती है, "यह मेरा स्वयं का स्वीकारा हुआ जीवन है। मैने अपनी मरजी से स्वीकारा है।"[101] इस चुनाव में वह शान्ति महसूस करती है।

मिति अपनी जिम्मेदारियां पूरी करते-करते बुढ़ापे की ओर बढ़ रही थी, अफसर बन चुकी थी तब उसका जिन्दगी को देखने का दृष्टिकोण भी बदला हुआ नजर आता है। वह जिन्दगी को खूब जीना और छोटी-छोटी चीजों में भी जीवन की हलचल को देखना चाहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, आधुनिक युग का प्रतिनिधीत्व करनेवाली मिति जीवन में इन अस्तित्ववादी संकटों से पीडित होकर भी उनका मुकाबला करना जानती है। महाभारत की समर्पित ऋतुमिता की प्रतीक बनकर भी आर्थिक आत्मनिर्भरता का अवसर देनेवाले आधुनिक युग की स्वतंत्रचेता युवती है। उसका व्यक्तित्व अपने अहं से संत्रस्त हो सकता है, किन्तु वह किसी के आगे आत्मसमर्पण को विवश नहीं हो सकती।"[102] कथा लेखक गणेशजी के अनुसार मिति उस युग में जिसमें "स्थितियाँ मनुष्य को जकडे हुए हैं लेकिन फिर भी वह उन्हें तोड रहा है - तोडता जा रहा है...।"[103]

अकेलापन, अलगाव, संत्रास, घुटन पीडा आदि संकटों में भी मिति की जिजिविषा कायम है, जो उपन्यास के अन्त में प्रेरणास्त्रोत बनकर रह गयी है।

7. अन्तराल- मोहन राकेश- 1972

मोहन राकेश कृत उपन्यास 'अन्तराल' अस्तित्ववादी दर्शन से अछूता नहीं रहा है। "मोहन राकेश का नाम भी अस्तित्ववादी उपन्यासकारों में लिया जाता है। उनके उपन्यास 'अन्तराल' में अस्तित्ववाद की गहरी छाप है।"[104] मोहन राकेश ने इस उपन्यास में परिस्थितियों से उभरी निराशा, पीडा, विवशता, दु-ख एवं संत्रास की अनुभूतियों का चित्रण किया। ऊबकाई से भरे जीवन का यह उपन्यास है। इसका हर पात्र उदास और बोझिल है।

1. अकेलापन :-

उपन्यास की नायिका श्यामा एक विधवा है, जिसे एक बच्ची भी है। बच्ची, ननद और सास का बोझ अकेली श्यामा ही उठाती है। मण्डी के वातावरण से ऊबकर वह बंबई में आती है, लेकिन वहाँ भी, "अकेलेपन की स्थिति उसके जीवन को बिखेर देती है। इसीलिए नायिका अपने में टूटन महसूस करती है। बिखरती है और कटु यथार्थ के रूप में अलग जा पडती है। उसके अन्दर जीवित रहने की इच्छा है, लेकिन अकेलापन उस जीवन को निरूद्देश्य बनाये हुअे है।"[105]

कुमार और श्यामा प्रेमी रहकर भी एक-दूसरे से अलग रहने के लिए अभिशप्त हैं। दोनों में जो 'अन्तराल' आ गया है, उसका प्रमाण यह कथन है, "एक बार कोर्ट में हस्ताक्षर किये थे फिर दूसरी बार भी किये जा सकते हैं। वह अलग होकर अपने लिए जिन्दगी में कोई भी और रास्ता अपना सकती है। वह रास्ता चाहे बिल्कुल अकेलेपन का हो।"[106]

2. संत्रास, उदासी एवं तनाव :-

इस उपन्यास के पात्र ऊब के कारण संत्रस्त हैं। अपनी ऊब मिटाने के लिए श्यामा बंबई आती है, जो मिटने के सिवाय बढ़ जाती है। इसीलिए संत्रस्त एवं उदास मनोभाव को लेकर वह फिर मण्डी वापस लौटने का निश्चय कर लेती है। "श्यामा के जीवन में दबाव की स्थिति बहुत ही विकराल रूप धारण कर लेती है और तनाव की स्थिति उसके अन्तर मन को अकझोर देती है। यहीं कारण है कि, मनोवैज्ञानिक रूप से श्यामा के जीवन

का संघर्ष संत्रास की स्थिति बनकर रह गया है।"[107]

3. स्वतंत्रता की समस्या :-

इस उपन्यास में सीमा और श्यामा दोनों में इस भावना का पुट मिलता है। "अस्तित्ववादी विचारधारा के अनुसार व्यक्ति अपने में स्वतंत्र है, जिसके कारण कई बार वह विडंबना का शिकार बन जाता है।"[108] सीमा भी स्वतंत्रता की भावना के कारण एक विडंबना का शिकार है। वह अपनी माँ, भाभी सभी से कटी हुई है और इसमें वह अपनी स्वतंत्रता का फायदा उठा रही है।

श्यामा का स्वतंत्रता का अर्थ अलग है। उसके स्वतंत्रता के बारे में विचार है, "मैंने बीजी से भी यह बात कह दी है। इनकी अपनी जिन्दगी है। ये जिस तरह से चाहे, उसे जिए। हम में से किसी का उसमें दखल नहीं है। मेरी अपनी जिन्दगी है। मैं जिस तरह से उसे जिऊँ, तुम में से किसी की उसमें दखल मुझे बर्दाश्त नहीं होगी।"[109]

4. अस्तित्व की भावना :-

इस उपन्यास में जो रिश्तेनाते बंध गये हैं, ये भौतिकवाद का आधार हैं। सभी संबंध अर्थकेन्द्रित हैं। इनमें जो पात्र चेतना के धरातल पर जाकर सोचते हैं, वे निकट और अपमानजनक स्थितियों में जीने के लिए बाध्य होते हैं। "अन्तराल उपन्यास के पात्र एक ही समाज की ईकाई होते हुए भी अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व लिये हुए हैं। समाज में रहकर भी समाज से कटे हुए। कुछ पात्र इसीलिए जीते हैं कि, वह चेतना के स्तर पर सोचते हैं और कुछ चेतना के स्तर पर नहीं सोचते हैं।"[110] इनमें से एक श्यामा की सास बीजी है। सीमा का अनीश्वरवाद दृष्टिकोण भी इस उपन्यास को अस्तित्ववादी बनाने के लिए सहाय्यक बनता है।

श्यामा और उसके पति के संबंधों का अन्तराल कुमार और उसके पत्नी के संबंधों का अन्तराल यह सब आज के आधुनिक सभ्यता के विचारों की देन हैं। कुमार और श्यामा एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते लेकिन दोनों के संस्कार उन्हें आगे बढ़ने नहीं देते। श्यामा से कायम संबंध बनाने के विचार में कुमार द्वैत मन-स्थिति में है। "अगर कोई चीज उसे रोके हुए थी, तो वह थी, उसके इरादों को प्रयत्न में बदलने से पहले की असुविधापूर्ण मन-स्थिति जिसमें उसने अपने अस्तित्व को ही एक अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर रखा था।"[111]

आजकल की समाज की कुछ मानसिक और कुछ आर्थिक परिस्थितियों ने इस उपन्यास के पात्रों में अन्तराल पैदा किया है। हर एक ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इस अन्तराल को बनाये रखा है। मोहन राकेशजी ने यह स्पष्ट करने के लिए इस उपन्यास में स्त्री-पुरूष के संबंधों को मुख्य विषय बनाया है।

इस प्रकार इस उपन्यास के पात्र आज की भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण अस्तित्ववादी स्थितियों से जीवनयापन करते हैं। यह ऊब भरे जीवन का उपन्यास है। आपसी ऊबकाई से यहाँ निरर्थकता को उभार लिया है। अपनी बेचैनी के कारण ये पात्र अस्थिर जीवन जीते हैं। बार-बार स्थलांतर करते हैं। अलगाव से ये अभिशप्त है।

8. एक चिथड़ा सुख -निर्मल वर्मा- 1989

निर्मल वर्मा के उपन्यासों की विशेषता यह है कि उनके उपन्यासों में जीवनविषयक चिन्तन मिलता है। वे हिन्दी के एक चिंतनात्मक रचनाकार है। उनके उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति के बातों की चर्चा ज्यादह होती है।पात्रों के पाश्चात्य नाम, पाश्चात्य क्लब, होटल, शराबों के पाश्चात्य नाम आदि से उनमें पाश्चात्य प्रेम ज्यादह लगता है।

उपर्युक्त बातों के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्मल वर्मा को भारतीय कहानीकार नहीं माना जा सकता। उनके पात्र, शिल्प, वातावरण उन सबसे हमारा कोई वास्ता नहीं। हम उनमें केवल इस प्रकार का मजा ले सकते हैं कि, किसी विदेशी रचनाकार की कहानियों का अनुवाद पढ़ रहे हैं। इस बात पर स्वयं निर्मल वर्मा को कोई एतराज नहीं है। वे स्वयं अपनी एक मुलाकात में कहते हैं, "मेरे भीतर युरोप भी है,एक लेखक होने के नाते मेरे लिए यह गहरी ईमानदारी की चीज होगी कि, अपनी लेखनी में किसी पक्ष को झुठला पाँऊ या छोड़ूँ।"[112]

अस्तित्ववाद पाश्चात्य की देन है, 'एक चिथड़ा सुख'इस उपन्यास में निर्मलजी ने पात्रों के माध्यम से अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है।

1. अकेलापन :-

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दु:खी मन का सूनापन, अकेलापन विषद किया है। अकेलेपन में ऊबे हुए इसके पात्र ऐसे सुख की तलाश में है जो सामाजिक प्रतिबद्धता से परे, सामाजिक नियमों से परे हैं। इसमें जो बिट्टी है, उसका अकेलापन एवं अधूरापन प्रस्तुत वाक्य से उजागर होता है, "कुछ लोग अपने अकेलेपन में

काफी संपूर्ण दिखायी देते है - उन्हें किसी चीज की जरूरत महसूस नहीं होती। किन्तु बिट्टी में कोई ऐसा मुकम्मिलपनं नहीं दिखायी देता था।"[113]

बिट्टी जो अभिनय की दीवानगी के कारण इलाहाबाद से दिल्ली चली आयी है। आत्मीय एकान्त के सुख के तलाश में है। उसकी यह तलाश उसके दोस्तों में जारी है। जो अपनी आधी जिन्दगी बाहर (भारत के बाहर) बीताकर आये है। उनमें डैरी, नित्तीभाई, इरा वगैरह है। "जो अपने परिवेश से पूरी तरह जुड नहीं पाते, साथ ही पाश्चात्य सभ्यता से आक्रान्त यहां के जनजीवन से स्वयं को काटकर अकेले होते चले जाते हैं।"[114]

बिट्टी अपने कजिन 'मुन्नू' के साथ बरसाती में रहती है। उसे भी उसने अकेला बना दिया है। जो भी इलाहाबाद से आया है। "घर बहुत दूर था और बिट्टी जो इतनी पास थी, उसे अकेला छोड देती थी।"[115] बिट्टी सुबह बहुत जल्दी स्टुडिओ चली जाती और उसके लिए कागज की चिप्पियों पर लिखकर समाचार छोडती कि, वह देर से लौटेगी। फिर वह दिनभर अकेला रहता। "कागज की हर चिप्पी पर उसका एक खाली दिन चिपका रहता - उसके अकेलेपन का कैलेंडर"[116]

निर्मल वर्माजी के उपन्यास का यह अकेलापन उन संवेदनशील भावुक पात्रों का होता है जो समाज के कोनों में एकान्त खोजता रहता है। "भारतीय मानस की जिस चेतना का वे स्पर्श करते हैं, वह आधुनिक यथार्थ की उस वर्ग-चेतना की पकड है, जो आज सारी सामाजिकता के बावजूद भीतर तक एकाकी यंत्रणा से त्रस्त है।"[117]

2. रिक्तता एवं खालीपन :-

उपन्यास का प्रधान पात्र बिट्टी अपने खालीपन का एहसास करती है। स्टुडिओ से रिहर्सल समाप्त होने के बाद उसके सभी मित्र बिट्टी के बरसाती पर आते हैं। "ये सभी पात्र रिक्तता से पूर्ण हैं। वे बरसाती पर बीअर पीते हैं और काफी शोर मचाते हैं। इन पात्रों के जीवन का अभिन्न अंग सूनापन ही है।"[118] बिट्टी के मन का खालीपन एवं सूनापन देखिए, "कभी-कभी उसे भ्रम होता है कि, तो वह बिस्तर पर लेटी दिखाई देती, छत की तरफ ताक रही होती, जैसे कोई आदमी ऊपर बैठा है और वह उससे बात कर रही है।"[119]

3. अस्तित्व के खोज की समस्या :-

प्रस्तुत उपन्यास के सभी पात्र उस सुख के लिए भटकन में है, जो निर्मलजी के शब्दों में 'एक चिथड़ा' है। इरा और मित्तिभाई के संबंधों का सुख इरा के लिए उतना सहज और उन्मुक्त नहीं है जितना कि, डैरी और बिट्टी के संबंधों में है। वह हमेशा हिन्दुस्तान में रहे या लौटें इस तनावग्रस्त द्वंद्व में डूबे हैं। जिन्दगी के दो रूप दु-ख और सुख की अनुभूति से जीकर अस्तित्व के प्रयास में वे अपनी भटकन और तृप्ति को बाँटते हैं।

डैरी की पगली बहन अपनी भयंकर प्रवृत्ति के बावजूद भी जीवनसत्य को पहचानती है और बिट्टी कजिन को नकली अभिनय की दुनिया से मुक्त होने के लिए कहती है, "उसने उसे छोड दिया, चिक ऊपर उठायी और धक्का देकर उसे बाहर अंधेरे में धकेल दिया। "जाओ, वे तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे।"[120] यह लडकी जैसे स्वयं निर्मल वर्मा का सूक्ष्म सामाजिक अध्ययन हम तक पहुँचाती है कि, "आज का हर व्यक्ति एक आरोपित जिन्दगी जीता है - नकली जिन्दगी या अभिनयभरी जिन्दगी।"[121] यह बात कर वह समाज में जागृति लाना चाहते है।

प्रस्तुत उपन्यास में "स्वयं बिट्टी और अन्य पात्रों की त्रासदी यह है कि, वे अपनी पहचान की तलाश में भटक रहे हैं।"[122] उनकी पहचान आज के अस्तित्ववादी संकटों से घिरी है जिसमें अकेलेपन का गहरा विषाद है जिसका दीवार पर चिपकी छिपकली तक को एहसास है, वह उपन्यास के पात्रों को पूछती है, "आल एलोन?"[123] यहाँ बिट्टी के मन का सूनापन विशद किया है। बिट्टी अकेलेपन के एहसास से भर उठी है। अपने खालीपन को तोडने के लिए वह स्टुडिओं में रिहर्सल के लिए जाती है। यहाँ बिट्टी, बिट्टी के कजिन ये सब रिक्तता से भरे हैं।

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों में अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, संत्रास, दु-ख, मृत्युबोध, ईश्वरविषयक चिंतन, पीडा, निराशा, निरर्थकता, शून्यता एवं रिक्तता, घुटन एवं टूटन, डर की भावना, अवसाद, स्वतंत्रता , वरण एवं चयन की स्वतंत्रता, नगण्यता, विछिन्नता, असुरक्षितता की भावना, यांत्रिकीकरण, मूल्य विघटन, ऊब-ऊबकाई, भीड में अजनबीपन एवं अकेलापन, आत्मनिर्वासन की भावना, जीवन को सार्थक बनाने का आवेग, क्षण का महत्त्व या अलगाव आदि अस्तित्ववाद के सूत्र यहां देखने को मिलते हैं।

आलोच्य उपन्यासों की नायिकाएँ ऊबकाई से ओतप्रोत लगती हैं। अपने परिवार की जिम्मेदारियों को वहन करते-करते स्वतंत्र अस्तित्व की मांग भी करती है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की नायिका जो पारिवारिक बोझ को उठाने की जिम्मेदारी में अपने जीवन के उज्ज्वल क्षणों को खो देती है। 'टेराकोटा' की नायिका मिती की भी यही हालत है। ये नायिकाएँ अभिशप्त परिस्थितियों से टकराहट लेनेवाले स्वतंत्रता का वरण करती हैं। आलोच्य उपन्यासों के नायकों में यह बात नजर नहीं आती है। परिस्थितियों पर ये विजय पाने के लिए असफल बनते हैं। ये नायक परिस्थिती का हलाहल पीकर छटपटाते जरूर हैं, जीवन की भयावह स्थितियों का संप्रेषण भी अवश्य करते हैं परन्तु समाजवादी नायकों की भाँति विशिष्ट दिशा का संकेत नहीं करतें।

मोहन राकेश के पात्रों पर रिक्तता और शून्यता बोध हावी हो चुका है। इन सभी उपन्यासों में अकेलापन, अजनबीपन और अलगाव की स्थितियों के लिए पोषक परिवेश प्राप्त हुआ है। महानगरीय जीवन में व्याप्त कुण्ठा के दर्शन भी यहां होते है। महानगरीय यांत्रिकता, बेरोजगारी, पारिवारिक टूटन आदि के कारण निरर्थकता का निर्माण हो चुका है। यहां बिखरावजन्य अलगाव है। इन उपन्यासों में मानवीय स्वातंत्र्य की मांग पर बल दिया गया है।

द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका का प्रभाव इन पात्रों पर, उनकी मानसिकता पर देखने को मिलता है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों का जीवन तो पूर्णत- पाश्चात्य अस्तित्ववादी जीवन का समर्थक हैं, जो दूरे विश्वयुद्ध की चपेट में आ गये हैं। उनका दूसरा उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' के पात्रों में भी पाश्चात्य और भारत के संस्कारों का मिश्रण है। इनमें से अधिकांश अपने अस्तित्व की खोज में अंत तक भटकते रहते हैं।

राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' में 'लेस्बियाँ' जैसे नये विषय की समस्या का उद्घाटन कर एकाकीपन, अलगाव अजनबीपन, मृत्यु, स्वतंत्रता आदि अस्तित्ववादी समस्याओं को मनोवज्ञानिक धरातल पर सोचा है।मोहन राकेशजी के 'अन्धेरे बन्द कमरें' और 'अन्तराल' इन दो उपन्यासों की भौतिकता से भरे वातावरण का शिकार बने दांपत्य-जीवन का चित्रण अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से किया है। उषा प्रियंवदा के 'रूकोगी नहीं, ...राधिका ?' भी स्वतंत्रता की भावना के अतिरेक से सार्त्र की समर्थक लगती है।

आलोच्य उपन्यासों के पात्रों पर उपन्यास में चित्रित परिवेश एवं वातावरण का उनकी मानसिकता पर प्रभाव दिखायी देता है। दिल्ली, कलकत्ता जैसे महानगरों में रहनेवाले पात्र वहाँ के यांत्रिक और भौतिक जीवन के आकर्षण शिकार बन गये हैं। 'वे दिन' जैसे पूरे विदेशी वातावरण में चित्रित उपनयासों के पात्र

वही से पले अस्तित्ववादी दर्शनसे पूरी तरह से परिचित हो गये हैं। आलोच्य उपन्यासों में कुछ उपन्यासों के अधिकांश पात्रों के नाम भी विदेशी ही हैं। सभी उपन्यासों का वातावरण महानगरों का होने के कारण पात्रों के मानसिकता पर यांत्रिक और भौतिक जीवन का ज्यादातर प्रभाव देखने को मिलता है।

ये अस्तित्ववादी उपन्यास हमें मानवमन की अभिवृत्तियों से परिचित कराते हैं, लेकिन अवस्था से ऊपर उठने का जीवनबोध कम देते हैं। लगता है कि अस्तित्ववाद से प्रभावित हिंदी उपन्यास एक अधूरी यात्रा है।

: संदर्भ-सूची :

1. शुकदेव सिंह - प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद, अनुपम प्रकाशन, पटना, सं. 1982, पृ. प्रस्तावना से
2. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलानात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, सं. 1997, पृ.268
3. वही, पृ. 272
4. उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1961, पृ. 14
5. वही, पृ. 79
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 114
8. वही, पृ. 127
9. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 95
10. उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1961, पृ. 122
11. वही, पृ. 116
12. शुकदेव सिंह - प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद, अनुपम प्रकाशन, पटना, सं. 1982, पृ.75
13. डॉ. अतुलविर अरोडा - आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजब युनव्हर्सिटी, चण्डीगढ, सं. 1974, पृ. 172
14. वही, पृ. 172
15. उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1961, पृ. 61
16. वही, पृ. 126
17. वही, पृ. 110

18. इंद्रनाथ मदान -हिन्दी उपन्यास - एक नई दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1975, पृ. 68-69

19. डॉ. नेमीचन्द्र जैन - अधूरे साक्षात्कार, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली सं. 1966, पृ. 127

20. मोहन राकेश - अन्धेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 174

21. वही, पृ. 122

22. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 99

23. वही, पृ. 97

24. मोहन राकेश - अन्धेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 174

25. वही, पृ. 202

26. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 101

27. मोहन राकेश - अन्धेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 348

28. डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1978, पृ. 204

29. वही, पृ. 204

30. वही, पृ. 2

31. डॉ. नेमीचन्द्र जैन - अधूरे साक्षात्कार, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली सं. 1966, पृ. 131

32. वही, पृ. 131

33. डॉ. प्रदीप शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान, अभय प्रकाशन, कानपुर, सं. 1990

34. डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे - हिन्दी उपन्यास-विविध आयाम, पुस्तक संस्थान, कानपुर, सं. 1977, पृ. 287

35. वही, पृ. 287

36. माधुरी खोसला - हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प, विजयन्त प्रकाशन, दिल्ली,पृ.154

37. निर्मल वर्मा - ' वे दिन' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1976, पृ. 211

38. माधुरी खोसला - हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प, विजयन्त प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 154

39. निर्मल वर्मा - ' वे दिन' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1976, पृ. 211

40. वही, पृ. 58

41. वही, पृ. 117

42. वही, पृ. 35

43. 'आलोचना' - अक्तूबर -दिसंबर 76, पृ. 20

44. डॉ. रमेश कुन्तल मेघ - आधुनिकता -बोध और आधुनिकीकरण' अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1969, पृ. 323

45. निर्मल वर्मा - ' वे दिन' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,तृ.सं. 1976, पृ. 79

46. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 111

47. निर्मल वर्मा - ' वे दिन' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,तृ.सं. 1976, पृ. 79

48. वही, पृ. 167

49. वही, पृ. 212

50. वही, पृ. 212

51. वही, पृ. 157

52. वही, पृ. 214

53. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलानात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, सं. 1997, पृ.277

54. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 10

55. वही, पृ. 9

56. डॉ. प्रदीप शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान, अभय प्रकाशन, कानपुर, सं. 1990, पृ. 187

57. वही, पृ. 187

58. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 11

59. वही, पृ. 70

60. वही, पृ. 70

61. वही, पृ. 95

62. वही, पृ. 137

63. वही, पृ. 107

64. वही, पृ. 18

65. वही, पृ. 68

66. वही, पृ. 29

67. वही, पृ. 95

68. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 13

69. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 26

70. वही, पृ. 22

71. डॉ. माखनलाल शर्मा - हिन्दी उपन्यास - सिद्धांत और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1966, पृ. 187

72. Sygmand Freud -Anxiety or dread /A Introduction, New York, pocket books, 1970, p. 94

73. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 41

74. डॉ. प्रदीप शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान, अभय प्रकाशन, कानपुर, सं. 1990, पृ. 189

75. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 129

76. डॉ. प्रदीप शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान, अभय प्रकाशन, कानपुर, सं. 1990, पृ. 196

77. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि. सं. 1975, पृ. 133

78. वही, पृ. 148

79. वही, पृ. 148

80. डॉ. सरिताकुमार - महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1983, पृ. 120

81. उषा प्रियंवदा - रूकोगी नहीं, ...राधिका ? अक्षर प्रकाशन, दिल्ली च. सं. 1977, पृ. 34

82. वही, पृ. 15

83. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 137

84. वही, पृ. 135

85. वही, पृ. 137

86. उषा प्रियंवदा - रूकोगी नहीं, ...राधिका ? अक्षर प्रकाशन, दिल्ली च. सं. 1977, पृ. 102

87. डॉ. सरिताकुमार - महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1983, पृ. 120

88. उषा प्रियंवदा - रूकोगी नहीं, ...राधिका ? अक्षर प्रकाशन, दिल्ली च. सं. 1977, पृ. 47

89. वही, पृ. 63

90. डॉ. स्वर्णलता - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, सं. 1975, पृ. 256

91. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलानात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, सं. 1997, पृ.

92. लक्ष्मीकान्त वर्मा - 'टेराकोटा' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1971, पृ. 9

93. वही, पृ. 267

94. वही, पृ. 272

95. वही, पृ. 67

96. वही, पृ. 180

97. वही, पृ. 216

98. वही, पृ. 264

99. वही, पृ. 264

100. डॉ. उषा मंत्री - हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सं. 1991, पृ. 226

101. लक्ष्मीकान्त वर्मा - 'टेराकोटा' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1971, पृ. 269

102. डॉ. उषा मंत्री - हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सं. 1991, पृ. 224

103. लक्ष्मीकान्त वर्मा - 'टेराकोटा' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1971, पृ. 293

104. डॉ. विमलाकुमारी पण्डिता - उपन्यासकार मोहन राकेश, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1978, पृ. 79

105. वही, पृ. 74

106. मोहन राकेश - अन्तराल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं. 1972, पृ. 168

107. डॉ. विमलाकुमारी पण्डिता - उपन्यासकार मोहन राकेश, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1978, पृ. 86

108. वही, पृ. 80

109. मोहन राकेश - अन्तराल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं. 1972, पृ. 163

110. डॉ. विमलाकुमारी पण्डिता - उपन्यासकार मोहन राकेश, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1978, पृ. 82

111. वही, पृ. 48

112. विपाशा' - (द्वैमासिक) सितंबर 1998, पृ. 38

113. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1979, पृ. 28

114. डॉ. सुदेश बत्रा - हिन्दी उपन्यास - बदलते परिप्रेक्ष्य, रचना प्रकाशन, जयपुर, सं. 1991, पृ. 111

115. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1979, पृ. 12

116. वही, पृ. 45

117. डॉ. सुदेश बत्रा - हिन्दी उपन्यास - बदलते परिप्रेक्ष्य, रचना प्रकाशन, जयपुर, सं. 1991, पृ. 109

118. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलानात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, सं. 1997, पृ.285

119. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1979, पृ. 12

120. वही, पृ. 77

121. डॉ. सुदेश बत्रा - हिन्दी उपन्यास - बदलते परिप्रेक्ष्य, रचना प्रकाशन, जयपुर, सं. 1991, पृ. 114

122. हिन्दी साहित्यशब्दकोश - ग्रंथ निकेतन, पटना, सं. 1979, पृ. 88

123. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1979, पृ. 46

****